प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती है। ...घोषीय, महाप्राणीय तथा निरनुनासिकीय, ये चार प्रयत्न अपेक्षित हैं। यही बात अधिकांश ध्वनियों के लिये सत्य है।

स्थान

ध्वनियों का उच्चारण विशेष प्रयत्न से किया जाता है, किन्तु साथ ही यह प्रयत्न स्थान-विशेष या अंग-विशेष से किया जाता है। 'स्थान, वह है, जहाँ भीतर से आती हुई हवा को रोककर या किसी अन्य प्रकार के उसमें विकार लाकर ध्वनि उत्पन्न की जाती हैं। स्थान (place of articulation) भी उच्चारण में प्रयत्न जितने ही महत्वपूर्ण हैं और उनके आधार पर भी ध्वनियों का वर्गीकरण किया जा सकता है। स्वर के अग्र, मध्य, पश्च भेद स्थान पर ही आधारित हैं। किंतु स्वरों में इन तीनों स्थानों से तो संवृत-विवृत आदि का प्रयत्न होता है, शेष---अनुनासिक-मौखिक, वृत्त-मुखी-अवृत्तमुखी, घोष-अघोष आदि---प्रयत्न अन्य स्थानों पर होते हैं। व्यंजनों में भी ओष्ठ से लेकर स्वरयंत्र तक इसी प्रकार अनेक स्थानों पर प्रयत्न होता है। प्रमुख स्थान ओष्ठ, दाँत, वर्त्स, कठोर तालु, मूर्द्धा, कोमल तालु, अलिजिह्व, उपलिजिह्व तथा स्वरयंत्र है।

जिस प्रकार एक ध्वनि के लिए कई एक प्रयत्न अपेक्षित हैं, उसी प्रकार बहुत से प्रयत्न के लिये बहुत से स्थान भी अपेक्षित हैं। उपर्युक्त उदाहरण के 'ख' के लिए ही स्वरयंत्र (अघोष), अलिजिह्व (निरनुनासिक), कोमल तालु आदि स्थानों की आवश्यकता पड़ती है। केवल एक स्थान और एक प्रयत्न का विचार ही पर्याप्त नहीं है, जैसा कि प्रायः सभी ध्वनिशास्त्र के ग्रन्थों में मिलता है। किंतु, संक्षिप्तता और व्यावहारिकता की दृष्टि से प्रायः किसी भी ध्वनि के प्रमुख प्रयत्न और उस प्रमुख प्रयत्न के स्थान का ही विचार किया जाता है। इसी कारण उपर्युक्त उदाहरण के 'ख' के प्रयत्न और स्थान के बारे में उतने विस्तार में न जाकर संक्षेप में उसे स्थान की दृष्टि से 'कोमल तालव्य' और प्रयत्न की दृष्टि से 'स्पर्श' कहा जाता है। यही बात सभी व्यंजनों और स्वरों के बारे में की जाती है, यद्यपि किसी भी ध्वनि को पूर्णतः समझने के लिए उसके सभी स्थानों या अंगों और उनके द्वारा सम्पन्न प्रयत्नों का विचार किया जाना चाहिए।

व्यंजनों के वर्गीकरण के आधार

व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नांकित छः आधारों पर किया जा सकता है, जिनमें मुख्य प्रथम चार हैं---

(क) **प्रयत्न के आधार पर**—इस आधार पर व्यंजनों के मुख्यतः निम्नांकित भेद होते हैं; (१) **स्पर्श** (stop)—स्पर्श का अर्थ है 'छूना'। इसके उच्चारण में एक

कर उच्चारण करते हैं) कहा है तथा डॉ० कादरी और चटर्जी ने उत्क्षिप्त, किंतु मेरे विचार में हिन्दी 'र' कंपनजात है। (ङ) **संघर्षहीन सप्रवाह** (Erictionless continuant) इसमें हवा का प्रवाह तो चलता रहता है, किंतु संघर्ष नहीं होता। य, व ऐसी ही ध्वनियाँ हैं। ये स्वर तथा व्यंजन के बीच में हैं। अत: इन्हें **अर्धस्वर** (semivowel) कहते हैं, यों ये अपनी प्रकृति में स्वर से अधिक व्यंजन हैं, अत: इन्हें अर्द्धव्यंजन कहना कदाचित् अधिक उपयुक्त है। इनके उच्चारण में उच्चारण-अवयव पहले क्रमश: इ और उ की स्थिति में होते हैं तथा फिर परवर्ती स्वर (या, वा) या व्यंजन की स्थिति में हो जाते हैं।

कभी-कभी व्यंजनों के प्रयत्न के आधार पर मोटे रूप से दो भेद किये जाते हैं :
(अ) **अवरोधी** (noncontinuant)—**जिसमें हवा रुक जाय**। स्पर्श तथा स्पर्श-संघर्षी ध्वनियाँ अवरोधी हैं, क्योंकि उनके उच्चारण में हवा रुक जाती है।
(आ) **अनवरोधी** (continuant)—जिनके उच्चारण में हवा रुके नहीं। नासिक्य, उत्क्षिप्त, कंपनजात पार्श्विक, संघर्षी, अर्द्धस्वर ध्वनियाँ अनवरोधी हैं। उनके उच्चारण में हवा का प्रवाह रुकता नहीं।

(ख) **स्थान के आधार पर**—इस आधार पर व्यंजन के प्रमुखत: निम्नांकित भेद हो सकते हैं : (१) **स्वरयंत्रमुखी** (laryngeal या glottal)[1]— उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वरयंत्रमुख से उच्चरित की जाती हैं। इन्हें **स्वरयंत्र-स्थानीय, काकल्य** या **उरस्य** भी कहते हैं। 'ह' (हिन्दी आदि का) स्वरयंत्रमुखी संघर्षी है। अरबी का 'हमज़ा' **स्वरयंत्रमुखी स्पर्श** (glottal stop) है।[2] उत्तरी जर्मन तथा कुछ अन्य भाषाओं में भी यह स्पर्श मिलता है। (२) **उपालिजिह्वीय** (pharyngeal)—उन ध्वनियों को कहते हैं, जो स्वर-यन्त्र और अलिजिह्व के बीच में उपालिजिह्व या गलबिल से उच्चरित होती है। इसके लिए जिह्वामूल को पीछे हटाकर गलबिल को संकीर्ण कर लिया जाता है। अरबी की 'बड़ी हे' और 'ऐन' इसी स्थान से उच्चरित होती हैं। उपालिजिह्वीय ध्वनियाँ प्राय: अफ्रीका में या उसके आसपास ही मिलती हैं। (३) **अलिजिह्वीय** (uvular)—कौवे या अलिजिह्व से इन ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है। इसके लिए जिह्वामूल या जिह्वापश्च को या तो निकट ले जाकर वायुमार्ग संकरा करते हैं, और संघर्षी ध्वनि उत्पन्न होती है, या स्पर्श कराकर स्पर्श-ध्वनि। इन ध्वनियों को **जिह्वामूलीय** या **जिह्वापश्चीय** भी कहा जाता है। क ध्वनि इसी प्रकार की है। (४) **कोमल तालव्य** (softpalatal)—इसे संस्कृत में कंठ्य (guttural या velar) कहा गया है। जीभ के पिछले भाग के सहारे इन ध्वनियों को उत्पन्न करते हैं। क, ख, ग, घ, ङ यही हैं।

---

१. कुछ लोग glottal और laryngeal में अन्तर मानते हैं।
२. glottal या Catch

(घ) **प्राणत्व के आधार पर**—प्राण का अर्थ है, 'हवा', 'श्वास' या 'हवा की शक्ति'। इस आधार पर कुछ व्यंजन 'अल्पप्राण' कहे जाते हैं और कुछ 'महाप्राण'। जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा का आधिक्य हो या श्वास-बल अधिक हो, उन्हें 'महाप्राण' (aspirated) कहते हैं और दूसरी ओर जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा का आधिक्य न हो. या श्वास-बल कम हो, उन्हें 'अल्पप्राण' (unaspirated) कहते हैं।

'ह' ध्वनि शुद्ध 'प्राण' से बहुत मिलती-जुलती है, इसी कारण महाप्राण ध्वनियों को ह-युक्त, तथा अल्पप्राण ध्वनियों को ह-रहित कहा तथा लिखा जाता है। अर्थात् ख्=क्+ह (kh) या क=ख्—ह। कुछ लोगों ने ऐसा माना तो है, किन्तु वस्तुतः जहाँ तक मैं समझता हूँ, ऐसी मान्यता बड़ी भ्रामक है। हम जानते हैं कि 'ह्' ध्वनि संघर्षी है, चाहे उसका संघर्ष थोड़ा ही क्यों न हो। ऐसी स्थिति में ख् को यदि 'क्+ह' माना जाय तो 'क' स्पर्श है और 'ह' संघर्षी। इस प्रकार 'ख' ध्वनि स्पर्श-संघर्षी या स्पर्श और संघर्षी का योग हो जायगी, किन्तु हम जानते हैं कि 'ख' शुद्ध स्पर्श है। इसका आशय यह हुआ कि 'ख' को 'क्' का महाप्राण वाला रूप मानना तो ठीक है, किन्तु उसे 'क्', 'ह' का योग मानना भ्रामक है। प्राणत्व के आधार पर संघर्षी व्यंजनों को छोड़कर सभी व्यंजनों पर विचार करते हैं। हिन्दी के अल्पप्राण तथा महाप्राण व्यंजन हैं :

अल्पप्राण—क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, ल, र, ड़।

महाप्राण—ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, न्ह, फ, भ, म्ह, ल्ह, र्ह, ढ़।

इस प्रकार मोटे रूप में जिन ध्वनियों के लिए रोमन लिपि में H (th, kh आदि) या उर्दू लिपि में 'हे' जोड़ना पड़ता है, वे महाप्राण हैं, शेष अल्पप्राण।

(ङ) **उच्चारण-शक्ति के आधार पर**—इस आधार पर व्यंजनों के **सशक्त** (fortis) और **अशक्त** (lenis) तथा **मध्यम** ये तीन भेद किये जा सकते हैं। 'सशक्त' जिसमें मुँह की मांसपेशियाँ दृढ़ हों, जैसे स्, ट्। अशक्त में मांसपेशियाँ शिथिल होती हैं, र्, ल्। च्, श् आदि कुछ ध्वनियाँ दोनों के मध्य में आती हैं।

(च) **ह्रस्वता-दीर्घता के आधार पर**—ह्रस्व व्यंजन तो क, च, प आदि हैं और दीर्घ व्यंजन क्क, च्च, प्प आदि हैं, जिन्हें लेखन में द्वित्व के आधार पर प्रायः द्वित्व व्यंजन कहते हैं।

(छ) **संयुक्तता-असंयुक्तता के आधार पर**—इस आधार पर व्यंजनों के (१) **असंयुक्त**—जैसे क्, ट्; (२) **संयुक्त**—जैसे क्ट, प्व, ल्य; ये दो भेद किये

उच्चारण-अवयव दूसरे का स्पर्श करता है। स्पर्श के उच्चारण में तीन चरण होते हैं। पहले चरण में हवा भीतर से स्पर्श स्थान तक आती है, दूसरे चरण में दो अवयव एक-दूसरे का स्पर्श करके भीतर से आती हवा को रोक देते हैं। तीसरे चरण में दोनों अवयव एक-दूसरे के दूर हट जाते हैं और हवा बाहर निकल जाती है। ये तीनों चरण 'हवा का आगमन', 'अवरोध', 'तथा 'स्फोटन' हैं। स्पर्श व्यंजन दो प्रकार के होते हैं; **स्फोटित** (exploded) **स्पर्श**—जिसमें तीसरा चरण होता है, अर्थात् अंत में स्फोट होता है। यह स्वर के पूर्व आता है तथा इसमें उच्चारण तीसरे चरण के आरम्भ में सुनाई पड़ता है। **अस्फोटित** (unexploded) **स्पर्श**—इसमें तीसरा चरण नहीं होता तथा ध्वनि पहले चरण के अंत में सुनाई पड़ती है। यह स्पर्श व्यंजन के पूर्व (अप्सरा) या शब्दांत में (आप) आता है। भारतीय वैयाकरणों ने इस अस्फोटित उच्चारण को अभिनिधान कहा है। हिंदी में क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ तथा क़ स्पर्श हैं। संस्कृत में च, छ, ज, झ तथा पाँचों नासिक्य व्यंजनों को भी स्पर्श में रखा गया है। (२) **संघर्षी** (Fricative)—इससे उच्चारण में दो उच्चारण-अवयव एक-दूसरे के इतने निकट चले जाते हैं कि दोनों से बीच से निकलने वाली हवा घर्षण या संघर्ष करती हुई बाहर निकलती है। हिंदी में फ, व, स, ज़, श, ख़, ग़, ह संघर्षी व्यंजन हैं। संस्कृत में स, ष, श, ह संघर्षी व्यंजन हैं। (३) **स्पर्श संघर्षी** (affricate)—इस ध्वनियों के उच्चारण में प्रारंभिक चरण 'स्पर्श' का होता है तथा अंतिम चरण 'संघर्ष' का, हिंदी में च, छ, ज, झ यही हैं। संस्कृत में ये स्पर्श माने गये हैं। स्पर्श संघर्षी व्यंजन स्फोटित रूप में ही स्पर्श-संघर्षी रहता है, अस्फोटित होने पर स्पर्श हो जाता है; चना, नाच। (४) **नासिक्य** (Nasal)—इनके उच्चारण में हवा नाक से निकलती है। ङ, ञ, ण, न, म नासिक्य व्यंजन हैं। स्पर्श व्यंजनों में हवा का निकलना कुछ देर के लिए रुक जाता है (अवरोध की स्थिति में), किंतु नासिक्य व्यंजनों के उच्चारण में हवा नाक से निकलती रहती है। (५) **पार्श्विक** (lateral)—इनके उच्चारण में मुँह में मध्य मार्ग में दो अवयव एक-दूसरे से मिलकर वायु को अवरुद्ध कर देते हैं, किंतु हवा एक या दोनों पार्श्वों से निकलती रहती है, इसके आधार पर इसके दो भेद होते हैं : **एकपार्श्विक, द्विपार्श्विक**। 'ल' पार्श्विक व्यंजन है जो कुछ के उच्चारण में एकपार्श्विक तथा कुछ के उच्चारण में द्विपार्श्विक होता है। (६) **उत्क्षिप्त** (Flapped)—इसके उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर झटके से नीचे आती है : ड़, ढ़। (७) **कंपन-जात** (trilled)—इसके उच्चारण में किसी अवयव की नोक में से वायु के प्रवाह से कंपन होता है। उदाहरण के लिए हिंदी 'र' के उच्चारण में जीभ की नोक काँपती है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० बाबूराम सक्सेना ने हिन्दी 'र' को **लुंठित** (rolled) जिसका जीभ को बेलन की तरह लपेट

ड, ग आदि संघर्षी ध्वनियाँ भी यहाँ से उच्चरित होती हैं। (५) मूर्धन्य (cerebral)—उन ध्वनियों को कहते हैं, जिनके उच्चारण में मूर्द्धा से सहायता ली जाती है। संस्कृत में टवर्ग, ऋ, ष आदि मूर्द्धन्य थे—ऋटुरषाणां मूर्द्धा। हिन्दी में टवर्ग यद्यपि पुराने-नये सभी लेखकों द्वारा मूर्द्धन्य कहा गया है, किन्तु वस्तुतः उसका मूर्द्धन्य उच्चारण कम ही होता है। वह आगे खिसक आया है। उसे पूर्व-तालव्य (prepalatal) कहना चाहिए। यों कभी-कभी यह वर्ग कठोर तालव्य भी उच्चरित होता है। 'टूटा' जैसे शब्दों में तो वह प्रायः वर्त्स्य है। द्रविड़ तथा चीनी में कुछ ध्वनियाँ मूर्द्धन्य हैं। मूर्द्धन्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ की नोक को उलटकर मूर्द्धा से उसका स्पर्श कराते हैं, इसीलिए इसे प्रतिवेष्ठित कहते हैं। (६) कठोर तालव्य (palatal)—इनका उच्चारण कठोर तालु से होता है। जीभ के अगले भाग या नोक से इसमें सहायता ली जाती है। हिन्दी चवर्ग का उच्चारण यहीं से होता है। संस्कृत में इ, चवर्ग, य, श का उच्चारण यहीं से कहा गया है—इचुयशानां तालु। संक्षेप में कठोर तालव्य को तालव्य कहते हैं (७) वर्त्स्य (alveolar)—मसूड़े या वर्त्स (और जिह्वाग्र) की सहायता से उत्पन्न ध्वनियाँ वर्त्स्य कहलाती हैं। न, ल, र, स, ज इसी वर्ग के हैं। अंग्रेजी के T, D भी वर्त्स्य हैं। (८) दंत्य (dental)—दाँत की सहायता से उच्चरित ध्वनियाँ दंत्य हैं। इसमें जिह्वाग्र या जीभ की नोक की सहायता ली जाती है। हिन्दी के त, थ, द, ध दंत्य हैं। संस्कृत के लृ, तवर्ग, ल, स दंत्य थे। सूक्ष्मता से विचार करने पर दंत्य के अग्र, मध्य, मूल ये तीन भेद किये जा सकते हैं। (९) दंतोष्ठ्य (labiodental)—ऐसी ध्वनियाँ, जिनका उच्चारण ऊपर के दाँत और नीचे के ओठ की सहायता से होता है। व, फ दंतोष्ठ्य हैं। (१०) ओष्ठ्य (bilabial)—जिनका उच्चारण दोनों ओठों से हो। प, फ, ब, भ, म ऐसे ही हैं। इन्हें द्वयोष्ठ्य भी कहते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कुछ ध्वनियों के दो या अधिक प्रयत्न अपेक्षित होते हैं, इसी प्रकार कुछ ध्वनियों के लिए एक से अधिक स्थान आवश्यक होते हैं।

(ग) **स्वर-तन्त्रियों के आधार पर**—इस आधार पर व्यंजन के प्रमुखतः दो भेद हो सकते हैं: **घोष, अघोष**। जैसा कि कहा जा चुका है, घोष वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में स्वर-तन्त्रियों के निकट आ जाने से उसके बीच निकलती हवा से उनमें कंपन होता है। हिन्दी में कवर्ग आदि पाँचों वर्गों की अन्तिम तीन (अर्थात् ग, घ, ङ, ज, झ, ञ आदि) ध्वनियाँ तथा य, र, ल, व, ज, ग, ह, ड, ढ़ आदि घोष हैं। दूसरी ओर जिनके उच्चारण में कम्पन (स्वरतन्त्रियों में) नहीं होता, उन्हें अघोष कहते हैं। हिन्दी में पाँचों वर्गों की प्रथम दो ध्वनियाँ, क, ख, फ, स, श आदि अघोष हैं। सूक्ष्मता से विचार करने पर घोष ध्वनियों के भी पूर्ण घोष और अपूर्ण घोष दो भेद हो सकते हैं। हिन्दी 'ब' पूर्ण घोष है, किन्तु अंग्रेज़ी B अपूर्ण।